भारतीय संघवाद की समझ जरूरी

–डॉ. अखिलेश पाल

भारतीय संविधान निर्माताओं के सामने मुख्य प्रश्न था कि संविधान का स्वरूप एकात्मक हो या संघात्मक? लेकिन संविधान निर्माताओं ने अपनी सूझबूझ के आधार पर बीच का मार्ग चुना अर्थात् आवश्यकता के अनुसार परिवर्तन करके संविधान को बनाया। भारतीय संविधान, सिद्धांत में तो संघात्मक है लेकिन व्यवहार में उसका झुकाव एकात्मकता की ओर है।

भारतीय संविधान का स्वरूप आज भी संविधान विशेषज्ञों के मध्य विवाद का विषय बना हुआ है। संविधान के अंगीकृत हो जाने के बाद भी यह विवाद समाप्त नहीं हुआ। हमारे संविधान-निर्माताओं का ध्येय कोई मौलिक संविधान बनाना नहीं था अपितु वे तो एक 'कामचलाऊ' और 'व्यवहारिक' संविधान बनाना चाहते थे। इसी कारण उन्होंने प्रचलित संघीय संविधानों से केवल ऐसे तत्त्वों को लिया जिन्हें उन्होंने उपयोगी समझा। भारतीय संविधान के व्यवहारिक रूप में एकात्मकता की तरफ झुकाव होने से केन्द्र व राज्यों के मध्य भी लगातार तनाव बना रहता है। राज्य जहाँ अधिक स्वायत्तता की माँग करते हैं तो केन्द्र उनकी माँगों को अनसुना कर देता है। राज्य व केन्द्र में विरोधी सरकार होने पर केन्द्र सरकार राज्यों पर अपनी स्वेच्छाचारी शक्तियों का उपयोग करती रही है, जिससे दोनों के मध्य विवाद पैदा होते हैं। सामान्यतया संघ दो प्रकार के होते हैं :

फेडरेशन को एकजुट रखना–इस प्रकार में, सम्पूर्ण इकाई में विविधता को समायोजित करने के लिए विभिन्न घटकों के बीच शक्तियों को साझा किया जाता है। यहाँ शक्तियाँ आमतौर पर केन्द्रीय सत्ता की ओर झुकी होती हैं। उदाहरण : भारत,

सहायक प्रोफेसर, राजनीतिक विज्ञान विभाग, ईश्वर शरण पीजी कॉलेज, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, प्रयागराज
Email : akhilesh.mpissr@gmail.com

स्पेन, बेल्ज़ियम।

एक साथ आना संघ—इस प्रकार में, स्वतंत्र राज्य एक बड़ी इकाई बनाने के लिए एक साथ आते हैं। यहाँ राज्यों को एकजुट होकर चलने वाले संघ की तुलना में अधिक स्वायत्तता प्राप्त है। उदाहरण : यूएसए, ऑस्ट्रेलिया, स्विट्जरलैंड।

भारत क्षेत्र और जनसंख्या की दृष्टि से अत्यधिक विशाल और बहुत अधिक विविधताओं से परिपूर्ण है। ऐसी स्थिति में भारत के लिए संघात्मक शासन व्यवस्था को ही अपनाना स्वाभाविक था और भारतीय संविधान के द्वारा ऐसा ही किया गया है। संविधान के प्रथम अनुच्छेद में कहा गया है कि भारत, राज्यों का एक संघ होगा। लेकिन संविधान-निर्माता संघीय शासन को अपनाते हुए भी भारतीय संघ व्यवस्था की दुर्बलताओं को दूर रखने के लिए उत्सुक थे और इस कारण भारत के संघीय शासन में एकात्मक शासन के कुछ लक्षणों को अपना लिया गया है।

वास्तव में, भारतीय संविधान में संघीय शासन के लक्षण प्रमुख रूप से और एकात्मक शासन के लक्षण गौण रूप से विद्यमान हैं। भारत में ब्रिटिश शासन के दौरान केन्द्रीयकृत प्रणाली को अपनाया गया और सार शक्तियाँ ब्रिटिश प्रतिनिधियों के माध्यम से शासन किया जाता था। सन् 1891 में ब्रिटिश केन्द्रीयकृत प्रणाली में बदलाव आया और 1870 में लॉर्ड लिंट्न ने भूमि—राजस्व, कानून, न्याय के विषयों को प्रांतों में सौंप दिया गया। इससे विकेन्द्रीकृत की व्यवस्था प्रारंभ हुई। भारतीय शासन अधिनियम 1919 के माध्यम से 50 विषयों पर कानून बनाने का अधिकार प्रांतों को प्रदान किया था। भारत में भारत सरकार अधियिम के 1935 के माध्यम से सबसे पहले संघवाद शब्द का प्रयोग किया गया। इस प्रकार भारत में संघवाद का जन्म हुआ।

स्वतंत्रता पश्चात् भारतीय संविधान निर्माताओं ने भारत के विविधता वाले स्वर को पहचाना क्योंकि भारत में विभिन्न धर्मों, नस्लों, वंशों व जातियों वाले व्यक्ति निवास करते हैं। इसलिए भारत में शक्तियों का केन्द्रीयकरण न करके बल्कि विकेन्द्रीकरण की प्रक्रिया को अपनाया जाना चाहिए। यहाँ पर संघवाद प्रणाली की आवश्यकता है। भारत संघ व राज्यों के बीच शक्तियों के विभाजन के कारण मतभेद बना हुआ था परंतु संघवाद के माध्यम से इस समस्या का समाधान किया गया। इसके साथ केन्द्र सरकार के शक्तिशाली होने का भी प्रावधान संविधान में किया गया। संघात्मक व्यवस्था की स्थापना भारतीय राज्यों की सहमति से नहीं की गई है। भारत के संविधान में संघात्मक व एकात्मक दोनों के लक्षण पाए जाते हैं।

भारतीय संविधान के संघात्मक लक्षण संविधान का स्वरूप संघात्मक है

संघवाद वह तंत्र है जिसके द्वारा राज्य की सारी शक्तियों का विभाजन दो प्रकार की सरकारों के माध्यम से हो जाता है। वे कई प्रकार की सरकारें केन्द्रीय और राज्यों की सरकारों के रूप में होती हैं। संघात्मक सरकार की परिभाषा करते हुए फाइनर ने कहा है कि यह एक शासन है जिसमें सत्ता और शक्ति का एक भाग स्थानीय क्षेत्रों में निहित होता है और दूसरा भाग केन्द्रीय संस्था में। आयसी के अनुसार, ''संघात्मक राज्य एक ऐसी राजनीतिक रचना है जिसमें राष्ट्रीय एकता और शक्ति तथा प्रदेशों के अधिकारी की रक्षा करते हुए दोनों में सामंजस्य स्थापित किया जाता है।'' गार्नर के कथनानुसार, ''ऐसी शासन-प्रणालियों के केन्द्रीय और स्थानीय संगठन एक प्रभुसत्ता के अंतर्गत स्थिर होते हैं और ये दोनों प्रकार अपने निश्चित अधिकार-क्षेत्र की सीमाओं में, जो सामान्य संविधान द्वारा निर्धारित की गई हैं, सर्वोपरि होते हैं।''

वस्तुतः संघवाद का सिद्धांत सीमित सरकार के सिद्धांत से संबंधित है। संघवाद राष्ट्रीय सार्वभौमिकता और राज्यों के अधिकारों की पृथक् माँगों में जिस साधन द्वारा समन्वय और एकता स्थापित करता है—वह है लिखित संविधान, जिसके द्वारा सार्वभौमिकता संबंधी शक्तियों का विभाजन केन्द्रीय एवं राज्यों की सरकारों के मध्य किया जाता है। फिर संघवाद का मूल कारण शक्ति के विभाजन का सिद्धांत है। के.सी. व्हीयर के अनुसार, ''संचीय सिद्धांत से मेरा तात्पर्य शक्ति के विभाजन के तरीके से है जिससे सामान्य (संघीय) एवं क्षेत्राधिकारी (राज्यों) सरकार अपने क्षेत्र में समान एवं पृथक होनी है।

यद्यपि भारतीय संविधान में 'संघ' शब्द का प्रयोग नहीं किया गया है, लेकिन उपर्युक्त परिभाषाओं के संदर्भ में यह एक संघ राज्य है। भारतीय संविधान में संघात्मक व्यवस्था के सभी प्रमुख लक्षण विद्यमान हैं।

संविधान की सर्वोच्चता

संविधान की सर्वोच्चता से अभिप्राय यह है कि संविधान को केन्द्र और राज्य दोनों की शक्तियों का उद्‌गम माना जाए। हमारे संविधान में केन्द्रीय सरकार और राज्यों की सरकारों को संविधान के माध्यम से शक्तियाँ प्रदान की गई हैं। इस दृष्टि से केन्द्र और राज्य दोनों के स्वतंत्र सवैधानिक व्यक्तित्व है और वे संविधान द्वारा संरक्षित हैं। संविधान की सर्वोच्चता से दूसरा अभिप्राय यह है कि संविधान लिखित और अचल होना चाहिए जिसे साधारण संशोधन प्रणाली द्वारा इस प्रकार न बदला जा सके जिस प्रकार अन्य साधारण कानून बनते तथा संशोधित होते हैं। इसका लिखित होना इसलिए आवश्यक है कि

परिभाषा की दृष्टि से संघीय व्यवस्था को एक समझौता प्रधान सरकार कहा जाता है। समझौतों की शर्तों का लिखा होना इसलिए आवश्यक है कि दोनों सरकारों (केन्द्रीय सरकार तथा इकाई राज्यों की सरकारें) में मतभेद उत्पन्न होने की स्थितियों में शर्तों का अवलोकन कर समस्याओं का समाधान ढूंढ़ा जा सके। भारतीय संविधान लिखित है। उसकी संघीय व्यवस्था में शक्तियों का बंटवारा किया गया है। इसके संशोधन की भी एक विशेष प्रणाली है, जो साधारण प्रणाली से भिन्न है। संविधान के सर्वोच्च होने का तीसरा अभिप्राय यह है कि संविधान की सर्वोच्चता संरक्षित होनी चाहिए। ऐसी व्यवस्था होनी आवश्यक है कि यदि इस मान्यता को कोई भंग करे तो उसे रोका जा सके।

शक्तियों का विभाजन

भारतीय संविधान में शक्ति-वितरण की भी एक विस्तृत व्यवस्था की गई है। संविधान में शक्ति-वितरण के लिए सूची-सिद्धांत को अपनाया गया है। यह सिद्धांत 1935 के एक्ट से उधार लिया गया है। राष्ट्रीय महत्त्व के विषय, केन्द्रीय सूची के अंतर्गत रखे गए हैं। स्थानीय महत्त्व के विषय, केन्द्रीय सूची के अंतर्गत रखे गए हैं। स्थानीय महत्त्व के विषयों को राज्य सूची के अधीन रखा गया है। संविधान के इस अंश का निर्माण कनाडा के संघ की प्रेरणा पर आधारित है, परन्तु एक समवर्ती सूची और जोड़ दी गई, जो आस्ट्रेलिया के संविधान की देन है। शक्ति विभाजन तीन सूचियों के आधार पर किया गया है।

(i) संघ सूची : संघ सूची में 97 विषय हैं, यह सूची तीनों सूचियों में विशाल है। इसके प्रमुख विषय इस प्रकार हैं—प्रतिरक्षा, सशस्त्र सेनाएं, अणुशक्ति, विदेशी कार्य, राजनयिक प्रतिनिधित्व, युद्ध एवं शान्ति, डाक, तार, बेतार, दूरभाष, संचार, टंकण, विदेशी विनिमय, विदेशी ऋण, भारत का रिजर्व बैंक, सीमाकर इत्यादि विषय जो संघ के लिए समान हित के थे तथा सम्पूर्ण देश को एकसूत्रता प्रदान करने के लिए आवश्यक है। इस सूची में वर्णित विषयों पर केवल संसद को ही विधि निर्माण का अधिकार है।

(ii) राज्य सूची : मूल संविधान के अंतर्गत राज्य सूची में कुल 66 विषय रखे गए थे, लेकिन 42वें संवैधानिक संशोधन (1976) द्वारा राज्य सूची के चार विषय (शिक्षा, वन, जंगली जानवरों और पक्षियों की रक्षा तथा नाप-तौल) राज्य सूची से हटाकर समवर्ती सूची में कर दिए गए। इसमें कुछ प्रमुख विषय हैं—पुलिस, न्याय, जेल, स्थानीय स्वशासन, सार्वजनिक स्वास्थ्य, कृषि, सिंचाई और सड़कें आदि। राज्य सूची में शामिल विषयों के संबंध में कानून बनाने का अधिकार केवल राज्य विधानमण्डल को ही होता है।

(iii) समवर्ती सूची : इस सूची में वे विषय रखे गए हैं, जिनका महत्त्व क्षेत्रीय

और संघीय दोनों ही दृष्टियों में है। मूल संविधान के अनुसार इस सूची में 47 विषय थे, लेकिन 42वें संवैधानिक संशोधन द्वारा राज्य सूची के चार विषय समवर्ती सूची में शामिल 32 कर दिए गए और एक नवीन विषय 'जनसंख्या नियंत्रण और परिवार नियोजन' समवर्ती सूची में जोड़ा गया। इसमें कुछ प्रमुख विषय हैं—फौजदारी विधि और प्रक्रिया, निवारक निरोध, विवाह और विवाह-विच्छेद, कारखाने, श्रमिक संघ, औद्योगिक विवाद, सामाजिक सुरक्षा और सामाजिक बीमा, शिक्षा, जनसंख्या नियंत्रण और परिवार नियोजन आदि।

समवर्ती सूची के ये विषय केन्द्र तथा राज्य दोनों के ही क्षेत्राधिकार के अंतर्गत रखे गए हैं। इन विषयों पर यदि केन्द्रीय सरकार ने कोई व्यवस्थापन नहीं किया है तो राज्य के विधान-मण्डल कानून बना सकते हैं, किंतु यदि संसद कभी भी कानून बना दे तो वह राज्य द्वारा पारित विधि को शून्य करने में सक्षम होगी। परन्तु अनुच्छेद 254 के अंतर्गत इसका एक अपवाद भी है कि यदि समवर्ती सूची पर राज्य के व्यवस्थापन को राष्ट्रपति की अनुमति प्राप्त हो चुकी है, तो यह विधि संसद की विधि के बावजूद भी लागू हो सकेगी।

कनाडा की भांति भारत में भी अवशिष्टाधिकार केंद्र को ही प्रदान किए गए हैं। अनुच्छेद 249 के अनुसार, राज्य सभा के प्रस्ताव से संसद राज्य सूची के किसी भी विषय पर कानून बना सकती है। अनुच्छेद 250 के अनुसार संकटकाल में भी संसद राज्य सूची के विषयों पर कानून बना सकती है। इसी प्रकार अनुच्छेद 252 के अनुसार दो या अधिक राज्यों के निवेदन पर संसद राज्य सूची के विषयों पर व्यवस्थापन कर सकती है।

स्वतंत्र सर्वोच्च न्यायालय : भारतीय संविधान के संरक्षक के रूप में कार्य करने के लिए एक स्वतंत्र सर्वोच्च न्यायालय की भी व्यवस्था की गई है। भारतीय संघ व्यवस्था में उच्चतम न्यायालय को संघीय न्यायालय का स्थान दिया गया है और इस दृष्टि से वह संविधान का संरक्षक है। इस संरक्षण संबंधी कार्य को पूरा करने के लिए उसे न्यायिक पुनरावलोकन का अधिकार प्रदान किया गया है, जिसका व्यवहार करते समय वह अमेरिका की भांति 'ड्यू प्रोसस ऑफ लॉ' के अनुसार कार्य न करके 'प्रोसीजर्स एस्टेबलिस्ड बाई लॉ' के अनुसार कार्य करता है। संविधान के द्वारा एक सर्वोच्च न्यायालय और राज्यों में उच्च न्यायालयों की भी व्यवस्था की गई है जिन्हें उन कानूनों को अवैधानिक घोषित करने का अधिकार है, जो संविधान के विरुद्ध हैं। प्रो. के.बी. राव के शब्दों में, "इस दृष्टि से हमारा संविधान सोवियत संघ या स्विट्ज़रलैण्ड के संविधान से अधिक संघात्मक है।"

उच्च सदन का राज्य सदन होना : भारतीय संसद का उच्च सदन अर्थात् राज्य सभा राज्यों का सदन है। यह राज्यों का प्रतिनिधित्व करता है। यद्यपि यह सच है कि यह प्रतिनिधित्व समानता के आधार पर न होकर, जनसंख्या के आधार पर है।

संशोधन प्रणाली : भारतीय संविधान में संशोधन प्रणाली पूर्णतया संघीय प्रक्रिया के अनुरूप है। कतिपय संशोधन विधेयकों को राष्ट्रपति के समक्ष उनकी अनुमति के लिए प्रस्तुत करने से पूर्व कम-से-कम आधे राज्यों के विधानमण्डलों के संकल्प द्वारा स्वीकृति प्राप्त करना आवश्यक है। यदि आधे राज्यों के विधानमण्डलों की स्वीकृति प्राप्त न हो तो संविधान के अनेक महत्त्वपूर्ण अंशों में संशोधन नहीं किया जा सकता है।

उपर्युक्त तथ्यों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि भारतीय संविधान एक पूर्ण संघात्मक प्रणाली की स्थापना करता है। पावली ने लिखा है, ''भारतीय संविधान के संघीय न होने पर विवाद उठाने का कोई कारण दृष्टिगत नहीं होता। संविधान संघवाद की कसौटी पर खरा उतरता है।''

भारतीय संविधान के एकात्मक लक्षण : संविधान द्वारा शक्तिशाली केन्द्र की स्थापना

संविधान सभा के अनेक सदस्यों का यह मत था कि संविधान में संघात्मक सिद्धांत की 'नृशंसतापूर्ण हत्या' की गई है। पी.टी. बाको का मत था, ''जो संविधान, संविधान सभा ने निर्मित किया है, यह शरीर से संघात्मक है, किंतु आत्मा से एकात्म है। सभी शक्तियाँ संसद को प्रदान कर दी गई हैं और व्यवहारतः राज्य विधान मण्डल को कोई शक्ति प्रदान ही नहीं की गई है।'' पी.एस. देशमुख का मत था, ''जो संविधान बना है, यह संघात्मक की अपेक्षा एकात्मक अधिक है।'' श्री बी.एम. गुश का मत था, ''नए संविधान के अंतर्गत भारत संघात्मक राज्य न होकर विकेन्द्रीकृत एकात्मक राज्य होगा।'' प्रो. एस.पी. अक का तो स्पष्ट मत है, ''भारतीय संविधान को, जो कि दक्षिण अफ्रीका के समान है, यदि आवश्यक हुआ तो एकात्मक संविधान कहा जा सकता है, किंतु इसे किसी भी हालत में अर्द्ध-संघ राज्य नहीं कहना चाहिए।'' यदि भारतीय संविधान और राजनीतिक व्यवस्था का विश्लेषण किया जाए तो दो प्रकार के एकात्मक तत्त्व दृष्टिगोचर होते हैं :

1. भारतीय संविधान के अंतरंग में उपस्थित एकात्मक तत्त्व।
2. भारतीय संविधान के बहिरंग में उपस्थित एकात्मक तत्त्व।

भारतीय संविधान के अंतरंग में उपस्थित एकात्मक तत्त्व : डॉ. आंबेडकर समेत भारतीय संविधान-निर्माता भारतीय इतिहास के इस तथ्य से परिचित थे कि भारत

में जब-जब केन्द्रीय सत्ता दुर्बल हो गई तब-तब भारत ही एकता भंग हो गई और उसे पराधीन होना पड़ा। संविधान निर्माता भारत में इतिहास की पुनरावृत्ति नहीं चाहते थे। अतः संविधान-निर्माताओं ने केन्द्रीय सत्ता को अधिक शक्तिशाली बनाने का कार्य न्यायिक व्याख्या द्वारा सर्वोच्च न्यायालय पर छोड़ने की अपेक्षा स्वयं ही कर लेना उचित समझा। बेंजामिन स्कूनफील्ड ने लिखा है, ''भारतीय संघ जिस समस्या से ग्रसित है, यह है आर्थिक और राजनीतिक समस्याएं तथा प्रादेशिकता की संकीर्ण भावनाएं, जिनके समाधान के लिए केन्द्रीय सरकार के पास समुचित शक्तियाँ होना अपरिहार्य है।'' भारतीय संविधान में एकात्मक तत्त्व निम्नलिखित है :

इकहरी नागरिकता : प्रायः संघात्मक संविधानों में दोहरी नागरिकता पाई जाती है। अमरीका में ऐसा ही है, किंतु भारत में नागरिकता का संबंध संघ से है और राज्यों की अपनी कोई नागरिकता नहीं है। प्रत्येक भारतीय को सम्पूर्ण भारतीय क्षेत्र में समान अधिकार प्राप्त हैं। यद्यपि यह संघात्मक सिद्धांत के प्रतिकूल है, किंतु भारत की एकता को बनाए रखने की दृष्टि में इसे आवश्यक समझा गया। प्रो. के.बी. राव का कहना है, ''संघ राज्यों की सबसे बड़ी कसौटी यह है कि एकल के रूप में राज्य के अपने नागरिक हैं या नहीं, जिन पर अनन्य रूप से राज्य के कानून लागू होते हैं। इस दृष्टि से हमारे राज्य इंग्लैण्ड के स्वायत्तशासी राज्यों से अच्छी हालत में नहीं हैं। हमारे यहाँ केवल एकल नागरिकता है। इस दृष्टि से हमारी इकाइयों का दर्ज़ा अमरीका की इकाइयों के स्तर से नीचा है।

शक्तियों का बंटवारा केन्द्र के पक्ष में : हमारे संविधान में शक्तियों का बंटवारा इस प्रकार किया गया है कि केन्द्र को राज्यों की अपेक्षा अधिक शक्तियाँ दी गई हैं। उदाहरणस्वरूप, संविधान द्वारा महत्त्वपूर्ण विषय संघ सूची में रखे गए हैं। संघ सूची में 97 विषय रखे गए हैं और इस पर केवल संसद ही कानून बना सकती है। समवर्ती सूची में 52 विषय हैं। इन पर केन्द्रीय संसद तथा राज्यों के विधानमण्डल दोनों ही कानून बना सकते हैं, परन्तु यदि दोनों के बनाए हुए कानूनों में कोई विरोध उत्पन्न हो जाए तो केन्द्रीय कानून मान्य होता है और राज्यों द्वारा निर्मित कानून निरस्त माना जाता है। जहाँ तक सूची का संबंध है, इस पर राज्य विधानमण्डल कानून बना सकता है, परन्तु कुछ विशेष परिस्थितियों में संसद इस पर भी कानून बना सकती है। अवशिष्ट शक्तियाँ भी केन्द्र को प्राप्त हैं न कि राज्यों को। संविधान सभा में अनेक सदस्यों ने यह मत व्यक्त किया कि डॉ. आंबेडकर ने सब कुछ केन्द्र को प्रदान कर दिया है। संविधान निर्माताओं ने देश की सामयिक, आर्थिक, राजनीतिक परिस्थितियों को देखते हुए शक्तिशाली केन्द्रीय सरकार की अनिवार्यता अनुभव की। के. एम. मुंशी ने स्पष्ट कहा था, ''तथ्य यह है कि भारत के महान् दिन वे थे जबकि देश में

शक्तिशाली केन्द्रीय शक्ति थी और सबसे बुरे दिन वे थे जबकि केन्द्र को प्रांतों की शक्ति द्वारा कमजोर किया जा रहा था और इसकी अवज्ञा हो रही थी।'' संविधान-निर्माता यह जानते थे कि आज विश्व में केन्द्रीकृत सरकारों के निर्माण की प्रवृत्ति है और भारत में भी संघ को शक्तिशाली बनने से रोकना अनुचित होगा। डॉ. आंबेडकर ने स्पष्ट कहा था, ''मैं सन् 1935 के अधिनियम द्वारा स्थापित केन्द्र से भी अधिक शक्तिशाली केन्द्र की स्थापना के पक्ष में हूँ।''

इस प्रकार भारतीय संविधान ने एक अत्यंत शक्तिशाली केन्द्र का निर्माण किया है। एम. काश्यप के अनुसार, ''संघ सूची में 97 विषय हैं और वह तीनों सूचियों में सबसे लम्बी है। समवर्ती सूची में 52 विषय हैं जिन पर केन्द्रीय सरकार जब चाहे तब कानून बना सकती है। इसके अतिरिक्त, अवशिष्ट शक्तियाँ भी केन्द्रीय सरकार में ही निहित हैं।''

संघ और राज्यों के लिए ही संविधान : भारत में भारत के संविधान के अंतर्गत संघ के संविधान के साथ-साथ राज्यों के संविधान भी सम्मिलित हैं। भारतीय संघ की इकाइयों को अमरीका के राज्यों तथा स्विस कैण्टनों की भांति पृथक् संविधान के निर्माण का अधिकार नहीं है।

केन्द्रीय सरकार राज्यों की सीमाओं के परिवर्तन में समर्थ : अमेरिकी या आस्ट्रेलिया के संघ में इकाई राज्यों की सीमा में उनकी सहमति के बिना परिवर्तन नहीं किया जा सकता। किंतु हमारे संविधान के अनुच्छेद 3 के अनुसार संसद को यह अधिकार है कि वह (क) किसी राज्य से उसका कोई प्रदेश पृथक करके या दो या अधिक राज्यों को मिलाकर कोई नया राज्य बना है, (ख) किसी राज्य के क्षेत्र में कमी या वृद्धि कर दे तथा (ग) राज्य की सीमाओं तथा उनके नाम बदल दे। इनके लिए सद्यपि राष्ट्रपति संबंधित राज्य के विचार मालूम करते हैं, लेकिन इन विचारों को स्वीकार करना या न करना राष्ट्रपति की इच्छा पर निर्भर है।

एकीकृत न्याय-व्यवस्था : संघ और राज्यों के कानूनों को लागू करने के लिए दोहरी न्याय व्यवस्था आवश्यक है। भारतीय संघ में अमरीका की तरह दोहरी न्याय-व्यवस्था का प्रबंध करने के स्थान पर न्याय व्यवस्था को एकीकृत कर दिया गया है। सर्वोच्च न्यायालय के बाद न्यायालयों का गठन एक पिरामिड के रूप में होता है।

संकटकाल में एकात्मक शासन : हमारे संविधान में राष्ट्रपति को अनुच्छेद 352, 356 एवं 360 द्वारा संकटकाल की घोषणाएं करने का अधिकार है। अनुच्छेद 352 के अंतर्गत राष्ट्रीय आपातकाल के समय संसद को राज्य सूची में वर्णित सभी विषयों के ऊपर कानून बनाने और राज्यों पर सभी प्रकार के प्रशासकीय नियंत्रण प्राप्त हो जाते हैं। अनुच्छेद 360 के अनुसार, राष्ट्रपति वित्तीय संकट की घोषणा कर सकता है और

इसके अंतर्गत सभी राज्यों पर वित्तीय संकट के समय राष्ट्रपति राज्यों के धन विधेयकों को भी अपनी मंजूरी के लिए मंगवा सकता है। राज्य में वैधानिक संकट के समय राज्यपाल केन्द्रीय सरकार के एजेंट के रूप में राज्य का शासन चलाता है और उस समय संसद उस राज्य के लिए कानून बनाने का अधिकार रखती है। इस प्रकार संकटकाल में राज्य स्वायत्तता प्राप्त इकाई न रहकर एकात्मक राज्य के अंग हो जाते हैं। पायली के अनुसार, ''संकटकाल की घोषणा से संविधान का संघात्मक स्वरूप समाप्त हो जाता है और केन्द्रीय शासन सर्वोपरि हो जाता है। संविधान में उल्लिखित संकटकालीन प्रावधानों के संबंध में हृदयनाथ कुंजरू ने स्पष्ट कहा था, ''इन अनुच्छेदों से यह संभावना है कि राज्यों के साथ ऐसा व्यवहार किया जाए जैसे वे बच्चे हों और राष्ट्रपति ग्रामीण पाठशाला का एक शिक्षक।

महत्त्वपूर्ण विषयों की एकीकृत व्यवस्था : अधिकांश संघ राज्यों में दोहरा कानून, दोहरी न्याय-व्यवस्था, दोहरी उच्च लोक सेवाएं, दोहरा लेखा परीक्षण इत्यादि व्यवस्थाएं होती हैं। किंतु भारतीय संविधान द्वारा उन समस्त महत्त्वपूर्ण विषयों के संबंध में, जो राष्ट्र की एकता बनाए रखने के लिए आवश्यक है, एकरूपता स्थापित करने का प्रयत्न किया गया है। अखिल भारतीय प्रशासनिक तथा पुलिस सेवाओं की व्यवस्था की गई है और इन सेवाओं के सदस्य राज्यों के मुख्य प्रशासनिक पदों पर नियुक्त किए जाते हैं। राज्य सभा के दो तिहाई बहुमत से पारित संकल्प के द्वारा नई अखिल भारतीय सेवाएं भी स्थापित की जा सकती हैं। भारत के नियंत्रक एवं महालेखा परीक्षक के अधीन भारत की लेखा परीक्षा तथा लेखा सेवा का आयोजन है जो एक केन्द्रीय सेवा है, किंतु यह संघ के साथ-साथ राज्यों के व्यय का लेखा तथा लेखा परीक्षा कार्य को भी सम्पन्न करती है। निर्वाचन आयोग की नियुक्ति राष्ट्रपति द्वारा की जाती है और आयोग संसद के साथ-साथ राज्य विधानमण्डलों के निर्वाचनों को भी सम्पन्न करता है। दीवानी तथा दण्ड संबंधी कानून संहिताबद्ध हैं और पूरे देश पर लागू होते हैं। उनकी एकरूपता कायम रखने के लिए उन्हें समवर्ती सूची में रखा गया है।

राज्यों के राज्यपालों की नियुक्ति : भारतीय संघ के घटक राज्यों के राज्यपालों की नियुक्ति राष्ट्रपति द्वारा की जाती है। राज्यपाल राष्ट्रपति के प्रसाद पर्यन्त अपने पद पर रहते हैं। राज्यपाल केन्द्र के प्रतिनिधि के रूप में कार्य करते हैं। राज्यपाल द्वारा इस तरह से केन्द्रीय सरकार का राज्यों पर प्रत्येक स्थिति में पूर्ण नियंत्रण रहता है। राज्यपाल को नियुक्त किए जाने की यह विधि सम्मत सिद्धांतों का प्रतिफलन है। वह केन्द्र अथवा राज्य के प्रति निष्ठा में पारस्परिक विरोध की स्थिति में केन्द्र को ही प्रसन्न रखना चाहेगा चाहे इससे राज्य के हितों का बलिदान ही क्यों न करना पड़े।

आर्थिक दृष्टि से राज्यों की दुर्बल स्थिति : संविधान द्वारा वित्तीय दृष्टि से राज्य केन्द्रीय सरकार पर निर्भर बना दिए गए हैं। केन्द्र द्वारा राज्यों को विभिन्न प्रकार के अनुदान आदि दिए जाते हैं और इस आर्थिक सहायता के कारण केन्द्र राज्यों पर छाया रहता है। आर्थिक क्षेत्र में आत्मनिर्भर न होने के कारण राज्यों की स्वायत्तता नाममात्र की है। श्री हृदयनाथ कुंजरू के अनुसार, ''राज्यों की वित्तीय स्वायत्तता को वित्तीय आपात् संबंधी उपबंधों से बड़ा धक्का पहुँचा है।''

राज्यों का राज्य सभा में समान प्रतिनिधित्व नहीं : विश्व के अन्य संघों में प्रायः उच्च सदन में छोटे-बड़े सभी राज्यों को बराबर का प्रतिनिधित्व दिया गया है। वहाँ पर उनके आकार तथा आबादी का ध्यान नहीं रखा जाता है, परन्तु भारत में राज्यों को राज्य सभा में आबादी के आधर पर प्रतिनिधित्व दिया गया है।

राज्य विधानमण्डलों द्वारा पारित विधेयक : राष्ट्रपति की स्वीकृति के लिए यद्यपि राज्य विधान सभा द्वारा पारित प्रत्येक विधेयक राज्यपाल की स्वीकृति से कानून बन जाता है, किंतु कुछ विधेयक ऐसे भी होते हैं जिन्हें राष्ट्रपति की स्वीकृति के लिए सुरक्षित रखना पड़ता है और उनकी स्वीकृति पास होने पर ही कानून बनता है।

सुपरिवर्तनलशील संविधान : एकात्मक शासन प्रणाली में संविधान में संशोधन सरलता से किया जा सकता है। सवैधानिक और साधारण कानून में अंतर नहीं किया जाता है। भारतीय संविधान में भी ऐसे अनेक अनुच्छेद हैं जिनका संशोधन संसद सायाक बहुमत से कर सकती है।

केन्द्र द्वारा राज्यों के मतभेदों का निवारण : संघ तथा राज्यों के बीच अथवा दो या दो से अधिक राज्यों के बीच विवाद का निपटारा करने के लिए संघ की स्थिति महत्त्वपूर्ण है। केन्द्रीय सरकार के पास समन्वयकारी शक्तियाँ हैं। केन्द्रीय सरकार ही जिन आयोग, अंतरराज्यिक तथा क्षत्रीय परिषदों का गठन करती है, क्षेत्रीय परिषदों के माध्यम से केन्द्र राज्य सरकारों की भूमिका को नियंत्रित करता है। प्रत्येक क्षेत्रीय परिषद के अध्यक्ष के रूप में राष्ट्रपति एक केन्द्रीय मंत्री की नियुक्ति करता है।

भारतीय संविधान के बहिरंग में उपस्थित एकात्मक तत्त्व :

भारत एक राष्ट्र बनने की प्रक्रिया से गुजर रहा है। स्वाधीनता के तुरंत बाद देश के नेताओं ने एकता के महत्त्व को समझा और यह अनुभव किया कि चाहे जो भी हो, राष्ट्रीय या केन्द्रीय सत्ता को बनाए रखना है और देश के विभिन्न तत्त्वों को एक सूत्र में रखना है। संविधान के विचार-विमर्श में इस सिद्धांत का प्रभाव स्पष्ट है और इसलिए

हमारे संविधान में केन्द्रीय सत्ता की प्रधानता और राज्य की एकात्मकता को कायम रखने के साथ-साथ देश के विभिन्न अंगों को पूरी छूट और अधिकार देने का यत्न किया गया है। रजनी कोठारी के अनुसार, मुख्य बात यह है कि एकीकरण के लिए तरीका क्या अपनाया गया? इस तरीके में दो बातें हैं। एक, सरकार और सरकार के शासक दल की गतिविधियों के द्वारा देश में एकता की स्थापना और उनका दृढ़ीकरण। दूसरे, देश के विभिन्न तात्यों के अधिकारी और हितों का संरक्षण और मान्यता देकर उनको राष्ट्रीय जीवन और राजनीतिक व्यवस्था में शामिल करना। भारत की राजनीतिक एकता में राष्ट्रीय सरकार की प्रधानता और अन्य हितों व अल्पसंख्यकों के प्रति समझौते और उसे निभाने की भावना, इन दो प्रवृत्तियों का मुख्य योग है। संवैधानिक प्रावधानों के बावजूद कतिपय ऐसे राजनीतिक तत्त्वों का उदय और विकास भारत की राजनीतिक व्यवस्था में दिखलाई देता है जिनसे एकात्मकता में वृद्धि हुई है और केन्द्रीयकृत संघवाद का चलन हुआ है। ऐसे तत्त्व कुछ इस प्रकार हैं :

प्रधानमंत्री का करिश्माई व्यक्तित्त्व : भारत के प्रधानमंत्री का व्यक्तित्व करिश्माई और प्रभावशाली रहा है। जवाहरलाल नेहरू जैसे व्यक्तित्व वाले प्रधानमंत्री ने भारत को राजनीतिक स्थिरता और राष्ट्रीय दृष्टिकोण प्रदान किया। उनके प्रभाव के द्वारा राज्यों के नेताओं का व्यक्तित्व फीका पड़ता था और कोई मुख्यमंत्री उनका विरोध करने की सोच ही नहीं सकता था। नेहरू के बाद प्रधानमंत्री पद पर मुख्य रूप से श्रीमती इंदिरा गांधी ही कार्य करती रहीं। उनका व्यक्तित्व भी कम आकर्षक नहीं था, देश की जनता पर उनका अनूठा प्रभाव था। अनेक राज्यों के मुख्यमंत्रियों की नियुक्ति भी कई बार प्रधानमंत्री की इच्छा से हुई और उन नेताओं को राज्य राजनीति से विरक्त होना पड़ा जिन्हें प्रधानमंत्री का विश्वास प्राप्त नहीं था।

एकदलीय प्रभुत्व : भारत की राजनीति कांग्रेस के इर्द-गिर्द घूमती रही है। कांग्रेस की प्रधानता का कारण उसके हाथ में सरकार की शक्ति होना तथा उसका प्रभावशाली नेतृत्व रहा है। इसके साथ ही उसके संगठन की जनता में भी पहुँच रही है। इस प्रकार सरकार की शक्ति और जनता में पहुँच दोनों उसकी प्रधानता की जड़ें हैं। 1947 से 1967 तक केन्द्र और राज्यों में कांग्रेस दल की ही सरकारें रही हैं। 1971 के पश्चात् पुनः लगभग सम्पूर्ण भारत में कांग्रेस दल का एकछत्र शासन स्थापित हो गया। अतः कांग्रेस के सुदृढ़ संगठन द्वारा अनेक मतभेदों और विवादों का समाधान सरल रहा। सन् 1967 के पश्चात् कुछ राज्यों में गैर-कांग्रेस सरकारें बनीं। प्रो. रजनी कोठारी का कहना है, ''वास्तव में गैर-कांग्रेसी मुख्यमंत्रियों से निभाव केन्द्रीय कांग्रेस सरकार के लिए ज्यादा आसान सिद्ध हुआ, बजाय कांग्रेसी मुख्यमंत्रियों के, जो कांग्रेस दल और केन्द्रीय सरकार के मामलों में

भी दखल देने की कोशिश करते थे, क्योंकि वे अपने को महज मुख्यमंत्री नहीं, कांग्रेस का अखिल भारतीय नेता भी मानते थे।''

योजना आयोग : सन् 1950 में योजना आयोग का गठन किया गया। योजना आयोग को देश के सर्वांगीण विकास के संदर्भ में महत्त्वपूर्ण कृत्य सौंपे गए हैं। योजना आयोग के महत्त्व के संदर्भ में ही प्रधानमंत्री आयोग का अध्यक्ष होता है तथा उसके कार्यो को अधिक प्रभावी बनाने के लिए केन्द्रीय मंत्रिमण्डल के कुछ वरिष्ठ मंत्री भी आयोग से सम्बद्ध होते हैं। योजना आयोग ने अपने कार्यो का विस्तार किया है। वस्तुतः वह रक्षा को छोड़कर प्रशासन के सभी क्षेत्रों में भावी विकास का प्रमुख निर्णायक बन गया है। 15 मार्च, 1950 के प्रस्ताव में यह पूर्णतः स्पष्ट कर दिया गया था कि आयोग मूलतः एक परामर्शदात्री संस्था होगी। इसका कार्य आर्थिक नियोजन के मामलों पर शासन को अपनी सिफारिशें प्रस्तुत करना है, किंतु व्यवहार में आयोग ने संविधान और शासन दोनों को ही विशेष रूप से प्रभावित किया है। अशोक चंदा ने आयोग के महत्त्व के कारण उसे देश का 'आर्थिक मंत्रिमण्डल' कहा है। राज्य सरकारें तो वित्तीय सहायता और आर्थिक परामर्श के लिए आयोग पर अधिकांशतः निर्भर हैं। के. सन्यानम् ने लिखा है, ''इस समूची नियोजन-व्यवस्था ने नीति और वित्त संबंधी सभी मामलों में राज्य की स्वायत्तता को एक छाया का रूप प्रदान कर दिया।'' ग्रेनविल ऑस्टिन लिखते हैं, ''संविधान के निर्माण के समय इस प्रकार का कोई स्पष्ट विचार नहीं था कि नियोजन संघीय व्यवस्था को किस प्रकार प्रभावित करेगा। इस बात की तो कल्पना ही नहीं की गई थी कि योजना आयोग वित्त आयोग से अधिक महत्त्वपूर्ण हो जाएगा। इस बात का भी कोई प्रमाण नहीं है कि संविधान निर्मात्री सभा के सदस्यों ने इस बात का अनुमान लगाया था कि योजना व्यवस्था संघीय पद्धति को कोई मोड़ दे देगी, फिर भी समय ने यह बतला दिया है कि भारती संघवाद के अंतर्गत नियोजन का केन्द्रीकृत प्रभाव रहा है।''

राष्ट्रीय विकास परिषद : योजना आयोग की भांति ही राष्ट्रीय विकास परिषद भी देश की आर्थिक नीतियों के निर्धारण में अत्यंत प्रभावशाली निकाय है। आयोग के ही समान यह परिषद भी संविधान की उपज नहीं है। इसका लक्ष्य योजना आयोग, केन्द्रीय सरकार तथा राज्य सरकारों के मध्य सामंजस्य बनाए रखना है। वस्तुतः राष्ट्रीय विकास परिषद योजना-व्यवस्था की शीर्षस्थ संस्था है। योजना आयोग द्वारा निर्मित एवं राष्ट्रीय विकास परिषद द्वारा स्वीकृत योजना विकास का एक शासकीय कार्यक्रम बन जाती है। इसी कारण संधानम् ने इस 'भारतीय संघ की सर्वोच्च मंत्रिपरिषद' कहा है। अब व्यवहार में राज्यों की योजनाओं के संबंध में निर्णय राष्ट्रीय विकास परिषद के लिए जाते हैं जिससे राज्यों की स्थिति केन्द्रीय सरकार के एजेंट के समतुल्य हो गई है।

1989 के बाद भारत में अल्पमतीय और गठबंधन सरकारों का सिलसिला प्रारम्भ हुआ। अल्पमतीय और गठबंधन सरकारों का नेतृत्व करने वाला प्रधानमंत्री आमतौर से दुर्बल होता है और फिर जवाहरलाल नेहरू और इंदिरा गांधी के बाद प्रधानमंत्री करिश्माई व्यक्तित्व के भी धनी नहीं रहे। एक दलीय प्रधान व्यवस्था का अंत हुआ और राज्यों में क्षेत्रीय दलों के हाथों में सत्ता की बागडोर आई। करुणानिधि, चन्द्रबाबू नायडू, जी.के. मूपनार, मुलायम सिंह यादव, लालू प्रसाद यादव जैसे क्षेत्रीय नेता किंग मेकर्स बन गए। उदारीकरण के दौर में योजना आयोग की भूमिका का ह्रास होने लगा।

भारतीय संघवाद का बदलता प्रतिमान

भारत की राजनीतिक परिस्थितियों के साथ संघवाद के स्वरूप में भी परिवर्तन आता रहा है। भारत की संघ व्यवस्था को राजनीतिक तत्त्वों के बदलते परिप्रेक्ष्य में निम्न चार प्रकार से चित्रित किया जा सकता है :

केन्द्रीकृत संघवाद का युग

सन् 1950 से 1967 तक 'केन्द्रीकृत संघवाद का युग' कहा जा सकता है। सन् 1950 से 1964 तक का भारतीय राजनीति युग 'नेहरू युग' कहलाता है। इस युग में केन्द्र तथा राज्यों के संबंध मधुर बने रहे और उनमें उग्र मतभेद उभरकर सामने नहीं आए। इस कारण व्यवहार में कुछ ऐसे राजनीतिक तथ्य उभरे जिन्होंने भारत में केन्द्रीकरण की प्रवृत्ति को पनपने में मदद दी। केन्द्र में नेहरू, पटेल जैसे नेता मौजूद थे। केन्द्र तथा राज्यों में कांग्रेस का एकछत्र शासन था। अतः मतभेदों को दल के संगठन स्तर पर ही हल कर लिया जाता था। नेहरू के व्यक्तित्व तथा नेतृत्व-शक्ति का कोई राज्य विरोध करने तथा कोई नेता मतभेद उत्पन्न करने का साहस नहीं करता था। योजना आयोग तथा राष्ट्रीय विकास परिषद संघ तथा राज्यों के बीच तालमेल हेतु 'सुपर कैबिनेट' के रूप में कार्य कर रही थी और एक दल की प्रधानता के कारण इसके कार्यों को चुनौती नहीं दी जा सकती थी। इस काल में केन्द्रीयकरण की सशक्त प्रवृत्तियों के परिणामस्वरूप भारतीय संघवाद राजनीतिक समन्वय और आर्थिक विकास के दोहरे उद्देश्यों की पूर्ति का साधन बना।

सहयोगी संघवाद का युग :

सीतलवाड़ के अनुसार, ''चतुर्थ आम चुनाव (1967) के पश्चात् शक्ति का संतुलन राज्यों की ओर झुका कांग्रेस का एकछत्र शासन समाप्त हुआ, केन्द्र में नेहरू

जैसा व्यक्तित्व नहीं रहा और राष्ट्रीय विकास परिषद में अनेक दलों के मुख्यमंत्री अपनी केन्द्र विरोधी आवाज बुलंद करने लगे। राज्यों में नेहरू के बाद मुख्यमंत्री शक्ति के केन्द्र बन गए और वे केन्द्र को प्रभावित करने लगे। कांग्रेस दल के विभाजन (1969) के पश्चात् लोकसभा में शासक दल अल्पमत में आ गया जिससे केन्द्रीय नेतृत्व को राज्यों की माँग के आगे झुकना पड़ा।

1967 के चुनाव के पश्चात् संघ व राज्यों के पारस्परिक संवैधानिक संबंधों के विषय में मतभेद काफी उग्र रूप में उत्पन्न हुए। अधिकतर राज्यों में गैर-कांग्रेसी दलों की सरकारें बनीं। ये सरकारें संघ सरकार के नियंत्रण में उस सीमा तक नहीं रहना चाहती थीं जिस सीमा तक कांग्रेस दल की प्रादेशिक सरकारें पहले रहती थीं। प्रत्येक राज्य चाहता था कि केन्द्र द्वारा प्रस्तावित औद्योगिक संस्थानों को उसी के क्षेत्र में स्थापित किया जाए। भाषा के प्रश्न को लेकर संघर्ष उत्पन्न हुए। केन्द्रीय रिजर्व पुलिस को लेकर मतभेद पैदा हुए और राज्यपालों की नियुक्ति का प्रश्न भी विवाद का कारण बन गया।

केन्द्र और राज्यों के बीच विवादों के उपरांत भी आपसी सहयोग बना रहा और 'सहयोगी संघवाद' के युग का सूत्रपात हुआ। सहयोगी संघवाद का प्रमुख लक्षण केन्द्र और राज्यों की सरकारों की एक-दूसरे पर निर्भरता है। इस व्यवस्था में केन्द्रीय सरकार शतिशाली तो होती है, किंतु राज्य सरकारें भी अपने क्षेत्र में कमजोर नहीं होती। चौथे आम चुनाव के पश्चात् प्रधानमंत्री श्रीमती इंदिरा गांधी को मद्रास के श्री अन्नादुराई, उड़ीसा के आर.एन. सिंहदेव, उत्तर प्रदेश के चरणसिंह तथा पंजाब के गुरुनाम सिंह और अपने साझेदारों के मतभेद पैदा होने पर उनसे सलाह लेते थे। रजनी कोठारी लिखते हैं, ''जो लोग यह समझते थे कि राष्ट्र की भिन्न दलों की सरकारों के बनने से दल या पार्टी प्रणाली टूट जाएगी, उन्होंने एक तो कांग्रेस और प्रतिपक्षी दलों के नेताओं के पुराने संबंधों को भुला दिया और इस बात की उपेक्षा कर दी कि भारत में इस प्रणाली में इतना लोच है कि वह नए नेताओं और नए दलों को भी अपने अन्दर स्थान दे सके।''

एकात्मक संघवाद का युग :

सन् 1971 के पंचम लोकसभा के निर्वाचन तथा 1972 के राज्य विधासभाओं के निर्वाचन और जनवरी 1980 के लोकसभा एवं बाद के विधानसभा चुनावों से दी तथ्य उभरे प्रथम, भारतीय राजनीति में वीमनी न और संजय गांधी ही सर्वमान्य नेता हैं तथा द्वितीय, कांग्रेस दल ही जनता का नेतृत्व कर सकता है। इससे शक्ति का संतुलन केन्द्र की ओर झुक गया। जिस द्रुतगति से संविधान में संशोधन किए गए, उससे जो ऐसा प्रतीत होने लगा कि भारत एकात्मकता की ओर उन्मुख हो रहा है। जून, 1975 से मार्च, 1977

तक तो भारतीय राज्य एकात्मक राज्य में परिवर्तित कर दिया गया था। समूची शक्तियाँ केन्द्रीय सरकार के हाथों में आ गई। राज्यों के मुख्यमंत्रियों की स्थिति केन्द्रीय सरकार के सुबेदार जैसी हो गई। आपातकाल के दौरान मुख्यमंत्रियों का एक पैर अपने राज्य में रहता था तथा दूसरा दिल्ली में। श्री बहुगुणा और नंदिनी सत्पथी जैसे कार्क मुख्यमंत्रियों को केन्द्र के इशारे पर हटना पड़ा। जनवरी, 1976 में तमिलनाडु में और मार्च, 1976 में गुजरात में राष्ट्रपति शासन लागू कर दिया गया। तमिलनाडु में द्रविड़ मुनेत्र कड़गम और गुजरात में जनता मोर्चे का शासन था। जनवरी, 1980 के लोकसभा चुनावों के बाद केन्द्रीय सरकार ने नौ राज्यों की गैर-कांग्रेसी विधानसभाओं को भंग कर दिया। ऐसा लगने लगा कि देश पुनः एक दल प्रधान व्यवस्था की ओर उन्मुख हो रहा है।

सौदेबाजी वाली संघ व्यवस्था :

छठे आम चुनावों के परिणामों में भारतीय राजनीति में आमूलचूल परिवर्तन आया। केन्द्र में जनता पार्टी की सरकार स्थापित हुई और राज्यों में विविध दलों की सरकारों की स्थापना हुई। उत्तर प्रदेश, बिहार, मध्य प्रदेश, उड़ीसा, दिल्ली, राजस्थान, हरियाणा व हिमाचल प्रदेश में जनता पार्टी सत्ता में आई। पंजाब में जनता व अकाली दल, पश्चिमी बंगाल में मार्क्सवादी दल, तमिलनाडु व पाण्डिचेरी में अन्नाद्रमुक, कश्मीर में नेशनल कान्फ्रेंस, केरल में साम्यवादी दल के नेतृत्व वाला मोर्चा, कर्नाटक और आंध्र प्रदेश में कांग्रेसी सरकारें पदासीन थी। केन्द्र की जनता सरकार एक दुर्बल सरकार थी क्योंकि यह विभिन्न घटकों से बनी एक गठबंधन सरकार के समतुल्य थी। अतः राज्यों की सरकारों ने सौदेबाजी करने का अनवरत बल किया। यहाँ तक कि कतिपय गैर-जनता राज्य सरकारों ने राज्य स्वायत्तता का नारा बुलन्द किया। वित्तीय स्रोतों के वितरण को लेकर पश्चिम बंगाल की मार्क्सवादी सरकार ने सदैव केन्द्रीय सरकार से दबाव एवं सौदेबाजी की भाषा में बातचीत करने का प्रचार किया।

1989-2009 के निर्वाचनों से यह इंगित होता है कि भारत में संघ व्यवस्था का 'सौदेबाजी वाला प्रतिमान' ही कार्यरत है। विश्वनाथ प्रतापसिंह (1989), चन्द्रशेखर (1990), पी.वी. नरसिंहराव (1991), श्री एच.डी. देवगौड़ा (1996), श्री इन्द्रकुमार गुजराल (1997), श्री अटल बिहारी वाजपेयी (1998 एवं 1999) तथा डॉ. मनमोहन सिंह (2004 एवं 2009) के नेतृत्व में बनने वाली सभी केन्द्रीय सरकारें अल्पमतीय सरकारें थीं जिन्हें सत्ता में बने रहने के लिए उन दलों का सहारा लेना पड़ा, जो राज्यों में शक्ति के पुंज हैं। अनेक राज्यों में क्षेत्रीय दलों की सरकारें सत्तारूढ़ हैं जिनके कंधों पर केन्द्रीय

सरकार टिकी हुई है और अनेक मसलों पर वे केन्द्र से सौदेबाजी करने से नहीं हिचकिचाती। कावेरी जल विवाद पर कभी कर्नाटक आँख दिखाता तो कभी तमिलनाडु की अन्नाद्रमुक सरकार बंद आयोजित करती। अलमाती बाँध के मसले पर आंध्र प्रदेश के मुख्यमंत्री चन्द्रबाबू नायडू ने केन्द्र के साथ सौदेबाजी का रुख अपनाया जिससे तत्कालीन प्रधानमंत्री एच.डी. देवगौड़ा की स्थिति कमजोर हुई। फरवरी, 1998 के लोकसभा चुनावों में किसी भी गठबंधन को स्पष्ट बहुमत प्राप्त नहीं हुआ और भाजपा नेता अटल बिहारी वाजपेयी द्वारा केन्द्र में सरकार बनाने के दावे को उस समय बड़ा धक्का लगा जब अन्नाद्रमुक नेता जयललिता ने अपने समर्थन की कीमत वसूलने के लिए कतिपय शर्तें रखीं, जैसे कावेरी ट्रिब्यूनल के फैसले पर अमल, सभी नदियों का राष्ट्रीयकरण, 69 प्रतिशत आरक्षण को संवैधानिक संरक्षण, राज्यों को आरक्षण का कोटा अपनी जरूरत के हिसाब से तय करने का अधिकार, महिलाओं के लिए 33 प्रतिशत आरक्षण और आठवीं अनुसूची की सभी भाषाओं को राजभाषा का दर्ज़ा देना। बीजू जनता दल ने उड़ीसा को विशेष दर्जा प्राप्त राज्य घोषित करने की माँग की तो जम्मू-कश्मीर के मुख्यमंत्री फारूक अब्दुल्ला ने केन्द्र की ओर स्वायत्तता का पता उठाने का दुस्साहस किया। ममता बनर्जी ने पश्चिम बंगाल के लिए 'विशेष पैकेज' हासिल कर लिया तो चन्द्रबाबू नायडू ने अपने दल के लिए 'स्पीकर' का पद हथिया लिया। मई, 2004 के चुनावों के बाद केन्द्र में कुर्सी बचाने की कीमत कांग्रेस को राज्यों में सत्ता की चाबी सहयोगियों को देकर चुकानी पड़ी। केन्द्र में कांग्रेस को समर्थन देने के बदले सहयोगी दल कड़ी सौदेबाजी करने लगे। बिहार में उसे राजद की कृपा पर निर्भर रहना पड़ा, महाराष्ट्र में उसे राकांपा, कर्नाटक में जद (यू), आंध्र प्रदेश में तेलंगाना राष्ट्र समिति और राष्ट्रपति-उपराष्ट्रपति चुनाव में बसपा के सहयोग के बदले उत्तर प्रदेश में मायावती को रियायतें देनी पड़ीं। अप्रैल-मई, 2009 के 15वीं लोकसभा चुनावों में कांग्रेस को 206 सीटें मिलने और यूपीए सरकार को समर्थन देने वाले दलों की झड़ी लगने के बाद ऐसा लग रहा था कि प्रधानमंत्री बिना किसी खास दबाव के अपने साथियों का चयन कर लेंगे, लेकिन अमुक और नेशनल कांफ्रेंस के रवैये ने निराश किया। मंत्री पद और विभागों को लेकर सहयोगी दलों ने जिस तरह का दबाव बनाया उसे शुभ नहीं कहा जा सकता है।

2014 से शुरू हुए इस मौजूदा दौर में बीजेपी के उभार के साथ ही केन्द्रीय संघवाद की वापसी हुई है। गठबंधन सरकारों के तीन दशकों का दौर खत्म करते हुए 2014 और 2019 के लोकसभा चुनावों में बीजेपी ने संसद में बहुमत हासिल कर लिया। इसके साथ-साथ बीजेपी ने कई राज्यों में भी सत्ता हासिल की है। इसके चलते बीजेपी ने आज लगभग 'कांग्रेस व्यवस्था' की तर्ज़ पर अपना दबदबा क़ायम कर लिया है।

वैसे तो, कांग्रेस के कमजोर होने के कारण, केंद्र में बीजेपी बेहद शक्तिशाली राजनीतिक दल है। लेकिन राज्यों के चुनाव में अगर बीजेपी को कुछ हद तक चुनौती मिली है, तो ये क्षेत्रीय राजनीतिक दलों ने ही दी है। इस चरण के दौरान केंद्र और विपक्षी दलों के शासन वाले राज्यों के बीच कई बड़े संघीय टकराव देखने को मिले हैं, और विपक्ष शासिल राज्यों ने केंद्र की सत्ताधारी पार्टी पर दूसरे दलों को तोड़ने और राज्यपाल के पद का दुरुपयोग करने, विपक्षी दलों को डराने और राज्य सरकारों को अस्थिर करने के लिए केंद्रीय जाँच एजेंसियों का इस्तेमाल करने जैसे कई आरोप लगाए हैं। जहाँ तक प्रशासन की बात है, तो शुरुआत में जीएसटी कानून पारित करने, नीति आयोग और जीएसटी परिषद के गठन करने, फंड में राज्यों की भागीदारी बढ़ाने की वित्त आयोग की सिफारिश को स्वीकार करे जैसे मुद्दों पर केंद्र और राज्यों के बीच आम सहमति देखने को मिली थी। लेकिन, गैर बीजेपी शासित राज्य, सीएए, कृषि कानूनों, बीएसएफ के अधिकार क्षेत्र, जीएसटी के मुआवजे और कोविड-19 महामारी के भयंकर दौर में, केंद्र से मदद जैसे मुद्दों पर केंद्र सरकार के साथ टकराते रहे हैं। दिलचस्प बात यह है कि कश्मीर से अनुच्छेद 370 खत्म करने और सीएए जैसे राष्ट्रवादी मुद्दों पर केंद्र सरकार भी विपक्ष शासित कई राज्यों को अपने साथ ला पाने में कामयाब रही है, जिसे 'राष्ट्रवादी संघवाद' का नाम दिया गया है। हालांकि कोविड-19 के अभूतपूर्व संकट के बाद के दौर में केंद्र सरकार ने स्वास्थ्य की आपात स्थिति जैसे मुद्दों पर विकेंद्रीकृत और स्थानीय प्रशासन की अहमियत को स्वीकार किया और राज्यों को इस संकट से निपटने के लिए स्वायत्तता दी, जबकि खुद केंद्र ने समन्वय की भूमिका अपनाई। संक्षेप में कहें तो बीजेपी के प्रभुत्ववादी उभार के साथ एक दल के दबदबे वाला दूसरा दौर भले आ गया हो, कई क्षेत्रीय नेताओं की अगुवाई में राज्यों की तरफ से केंद्रीकृत संघवाद का लगातार विरोध हो रहा है।

निष्कर्ष

भारतीय संघवाद की सबसे अधिक सही व्याख्या यह होगी कि विभिन्न कालों में इसके विभिन्न रूप व्यवहार में देखने को मिले हैं। भारत में एक प्रकार का संघवाद नहीं, अनेक प्रकार के संघवाद हैं। एक ही समय में अलग-अलग राज्यों में केन्द्र के भिन्न-भिन्न प्रकार के संबंध रहे हैं।

वैसे तो भारत की संघीय व्यवस्था में केंद्र के प्रति बुनियादी तौर पर पक्षपात है। लेकिन, पहचान, स्वायत्तता और विकास को लेकर विभिन्न क्षेत्रों की विविधता भरी स्थानीय आकांक्षाओं की माँग ने देश की राजनीति को कई मामलों में तालमेल बिठाने पर मजबूर किया है। सभी चार चरणों के दौरान केंद्र के ज्यादा अधिकार हासिल करने

और एकरूपता लाने की कोशिशों का क्षेत्रीय ताकतों द्वारा विरोध किया गया है, जिससे मूल संघीय ढांचे की सुरक्षा हो सकी है; तीसरे स्तर के स्थानीय स्वशासन के जुड़ जाने से भारत में संघवाद का एक और मजबूत स्तंभ खड़ा हुआ है। इसके चलते प्रशासन के निचले स्तर तक सत्ता का विकेंद्रीकरण हुआ है। हालांकि, संघीय सहयोग बढ़ाने की राह में दो बड़े रोड़े हैं। पहला, भारत में संघीय रिश्ते राजनीतिक दल के मतभेद की चिंताओं से प्रभावित होते हैं। क्योंकि चुनावी मुकाबले के साथ-साथ केन्द्र और राज्यों में विरोधी दल होने से आपस में अविश्वास की भावना रहती है। इससे आम सहमति बनाने और राजनीतिक संवाद की राह दुश्वार होती है। दूसरा राजनीतिक मतभेद के रिश्ते जख़्म और शक-ओ-शुबहा के कारण केन्द्र और राज्यों के बीच सरकारी संस्थानों जैसे अंतरराज्यीय परिषद, जीएसटी परिषद, नीति आयोग और क्षेत्रीय परिषद जैसे मंच अभी भी प्रशासन के अहम मसलों में केंद्र और राज्यों और राज्यों के आपसी मतभेद कम करने के लिए पूरी तरह से इस्तेमाल नहीं किए जा रहे हैं। इसके अलावा जैसा कि हाल ही में प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी ने खुद माना था कि कोविड-19 महामारी ने एक बार फिर से देश में एक मजबूत संघीय ढांचे की जरूरत को दोहराया है, जिससे भारत जैसे विविधता भरे देश का विकास हो सके और अच्छा प्रशासन दिया जा सके।

संदर्भ :

अवस्थी, एस.एस., भारतीय सरकार एवं राजनीति, नई दिल्ली, 2010

ऑस्टिन, ग्रेनविल, इण्डियन कान्स्टीट्यूशन, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रैस, 1966

बिस्वाल, तपन, तुलनात्मक राजनीतिक संस्थाएं—प्रक्रियाएँ, 2013

भाम्भरी, सी.पी., दा इण्डियन स्टेट : फिफटी ईयर्स, सिप्रा, नई दिल्ली, 1999

जैन, पुखराज, भारतीय शासन एवं राजनीति, साहित्य भवन पब्लिकेशन, 2010

जोन्स, डब्ल्यू.एच. मोरिस, दा गवर्नमेंट एण्ड पॉलिटिक्स इन इण्डिया, बी.आई. पब्लिकेशन, 1974, दिल्ली

कविराज, एस. पॉलिटिक्स इन इण्डिया, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रैस, दिल्ली, 1998

कोठारी, रजनी, पार्टी सिस्टम एण्ड इलेक्शन स्टडीज, एशिया पब्लिशिंग हाउस, बाम्बे, 1967

पायली, एम.बी., कान्स्टीट्यूशनल गवर्नमेंट इन इण्डिया, एशिया पब्लिशिंग हाउस, बाम्बे, 1977

https://www.orfonline.org/hindi/research/indian-federalism075-the-foundation-of-a-strong-democracy/